Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 12, Issue 01, January-June, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2024

राग संगीत का गरिमामय प्रस्तुतीकरण: आगरा घराने के परिप्रेक्ष्य में

DR. MANAS VISHWAROOP
Assistant Professor (Vocal), School of Performing Arts, NMIMS University, Bhaktivedanta Swami Marg, Vile Parle(W.), Mumbai

सार: *हिंदुस्तानी राग संगीत को 'अभिजात' संगीत भी कहा जाता है। अभिजातता के इस गुण के कारण ही इसे शास्त्रीय संगीत कहा जाता है। विविध प्रकार की अमूर्त भावाभिव्यक्ति के साथ ही अभिजातता को अक्षुण्ण रखने के लिए विविध नियम भी प्रस्थापित हैं, जिस कारण हम इसे 'शास्त्रीय संगीत' भी कहते हैं। राग संगीत में शैलियों का महत्त्व प्रारंभ से ही रहा है। प्रत्येक शैली ने राग संगीत हेतु आवश्यक कुछ ख़ास गुणों को अपनी परंपरा में स्थान दिया है। ख़्याल विधा के अन्तर्गत 'आगरा घराना' अपनी ख़ास शैली हेतु जाना जाता है, और ऐतिहासिक रूप से इसका महत्त्व भी प्रतिपादित है। इस घराने ने 'अभिजातता' के गुण को किस प्रकार संरक्षित किया, और इस शैली में किन सांगीतिक गुणों के कारण गरिमामयता का बोध होता है, इसका विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत शोध आलेख में किया गया है। इसके अंतर्गत मुख्य रूप से कंठ के गुणधर्म तथा प्रस्तुति में निहित बारीकियों के अध्ययन पर प्रकाश डाला गया है।*

कुंजी शब्द: आगरा घराना, अभिजात संगीत, गरिमामय प्रस्तुतीकरण, कंठ गुण, लय-ताल, शैलीगत गुण

भूमिका

गरिमामयता आगरा गायकी का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। हिंदुस्तानी संगीत में गरिमामयता के आधार पर गीत प्रकारों को श्रेणियों में बाँटा गया है। जैसे – किसी सीधे-सरल फ़िल्मी गीत की अपेक्षा एक ग़ज़ल का काव्य, उसकी धुन तथा गायकी अधिक गरिमामय होती है। इस कारण ग़ज़ल को गीत की अपेक्षाकृत ऊंचे दर्ज़े का माना गया है। माना जाता है, की गीत प्रकार जितना अधिक गरिमामय होगा, श्रोता पर उतना ही उसका प्रभाव गहन होगा, तथा वह प्रभाव अधिक समय तक मन पर स्थायी भी रहेगा। यह भी ध्यान रहे; कि श्रोता की मानसिक-बौद्धिक अवस्था तथा पूर्व-संस्कारों पर भी यह निर्भर करता है। तथापि, यह तथ्य पूर्ण सत्य प्रतीत होता है, कि किसी भावुक मन तथा कुशाग्र बुद्धिमत्ता से पूर्ण व्यक्ति की अभिरुचि में गरिमामय गीत प्रकारों को ही वरीयता मिलती है। इसके कारणों की मीमांसा एक अन्य शोध की विषय-वस्तु हो सकती है। आगरा गायकी की गरिमामयता के दो मुख्य कारक प्राप्त हुए – आवाज़ की गरिमामयता तथा प्रस्तुतीकरण की गरिमामयता।

आवाज़ की गरिमामयता

आगरा घराने की गायकी गाने हेतु ऐसी आवाज़ तैयार की जाती है, जिसमें गोलाई (Bass), ज़वारी (Sharpness) तथा गाज (Volume) ये तीनों गुण हों। इसे त्रि-आयामी आवाज़ कहते हैं। ऐसी आवाज़ बनाने हेतु विशेष रियाज़ की आवश्यकता पड़ती है, जिसे इस घराने की शिक्षा-प्रणाली में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

गोलाई युक्त आवाज़

गोलाई से युक्त आवाज़ को 'घुमारदार' आवाज़ भी कहते हैं। गोलाई का यह गुण कंठ-ध्वनि में निम्न आवृत्तियों (Low Frequencies) की संख्या पर आधारित होता है। निम्न आवृत्तियों वाली ध्वनि में उपस्वरों (Overtones/Harmonics) की सघनता अधिक होती है, अतः इससे आवाज़ में गूंज का गुण भी तैयार होता है।

आवाज़ में गोलाई लाने हेतु खरज (मंद्र और अतिमन्द्र सप्तक) का रियाज़ आवश्यक है। मंद्र सप्तक के स्वरों का उगम नाभिस्थान से होता है। इस रियाज़ से सिद्ध होने के बाद कलाकार किसी भी सप्तक में स्वर लगाव के दौरान कंठ-नाद को सबल तथा गूंजयुक्त बना सकता है। खरज के रियाज़ से आवाज़ में खुलापन आता है तथा गले की मांसपेशियों को शक्ति प्राप्त होती है। खरज के रियाज़ हेतु गहरी सांस की आवश्यकता होती है; अतः इससे दीर्घ-श्वसन की साधना भी अनायास हो जाती है।

भारतीय संगीत के कतिपय राग मंद्र सप्तक में स्थित स्वरावलियों द्वारा ही शोभायमान बनते हैं। जैसे - शुद्ध कल्याण, मियां मल्हार, दरबारी कान्हड़ा, मलुहा केदार इत्यादि। इन रागों के स्वर-लगाव मध्य सप्तक में भी अन्य रागों से अपेक्षाकृत ज़ोरदार तथा मींड़-गमक इत्यादि से युक्त होते हैं। इन रागों की बंदिशों के मुखड़े तथा सम के स्थान भी अधिकतर मन्द्र सप्तक में ही स्थित होते हैं। इनके प्रभावी प्रस्तुतीकरण हेतु

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 12, Issue 01, January-June, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2024

खरज का रियाज परमावश्यक है। इसी कारण यह रियाज़ भारतीय शास्त्रीय संगीत की विधाओं के लगभग सभी घरानों में महत्त्वपूर्ण माना गया है।

आगरा घराने के गायक खरज रियाज़ का उपयोग केवल अतिमंद्र षड्ज लगाकर कंठ-साधना की कसरत का प्रदर्शन करने हेतु नहीं करते। बल्कि वे अपनी प्रस्तुति में गमक, खेंच तथा लहक इत्यादि अंगों के सुस्थापन हेतु गोलाई सहित सुदृढ़ आवाज़ का उपयोग करते हैं। उस्ताद फ़ैयाज़ खाँ साहब का ख़रज़ सुनकर दरो-दीवार काँप उठने का अनुभव अनेक लोगों ने साझा किया है। यह तो हुआ घुमारदार आवाज़ को अधिक ध्वनिमान सहित प्रकट करने का परिणाम। आवाज़ की गोलाई को जब मृदुता सहित, निम्नतर ध्वनिमान में पेश किया जाये, तो यह वात्सल्यपूर्ण भावों को भी प्रकट करती है। जैसे - किसी बालक को प्रेमपूर्वक कुछ समझाते समय हमारा कंठ-स्वर स्वतः ही मंद्रतर तथा गोलाई से युक्त हो जाता है।

इसके रियाज़ के विषय में उ० राजामियाँ कहते हैं - "सांस को लंबा करना और लंबी सांस से 'सा भरना' हर शागिर्द को सिखाया जाता है। सही, सहज लगाव से 'खरज भरने' के रियाज़ से आवाज़ में 'विकार' आता है। यानी गंभीरता का गुण पैदा होता है। खरज का रियाज़ करने से आगे के कामों की तैयारी आसान हो जाती है, जैसे – मींड़, घसीट और गमक वग़ैरह। मेरे उस्ताद खादिम हुसैन खां मुझे राग भैरव में अवरोही मंद्र सप्तक के सुर लगाना सिखाते थे, जिसमें आवाज़ और सुर के लगाव पर बहुत ध्यान दिया जाता था। खां साहब हमेशा कहते की – "आवाज़ और सुर ही ऐसी चीज़ है, जो श्रोता को सबसे पहले अपनी ओर खींचती है। आपकी विद्या और कलाकारी पर श्रोता का ध्यान बाद में जाता है।"[1]

ज़वारीदार आवाज़

आवाज़ का दूसरा गुण उसका 'ज़वारीदार' होना है। आवाज़ में ज़वारी पैदा करने हेतु कंठ तथा नासिका के मिलाप सहित नाद उत्पन्न किया जाता है। इसे Pallet Voice भी कहते हैं, जिसमें चेहरे पर स्थित Sinus Regions में भी आवाज़ गुंजायमान होकर नाद में पैनापन आता है। ज़वारी के कारण ध्वनि प्रकाशमान प्रतीत होती है। आगरा घराने में इसका विशेष रूप से रियाज़ करवाया जाता है। इसे गुरु के मार्गदर्शन में ही करना उचित होता है; अन्यथा अयोग्य रियाज़ से स्वर-यंत्र को हानि हो सकती है। कुछ लोगों की आवाज़ प्राकृतिक रूप से तीखापन लिए हुए होती है। ऐसे विद्यार्थियों को इस रियाज़ की आवश्यकता नहीं होती। जिनकी आवाज़ में पैनापन कम होता है, उन्हें ही इसका रियाज़ करवाया जाता है।

ज़वारी किसी मूल ध्वनि (Fundamental Frequency) के उपस्वरों (Overtones) की क्रमवार तथा अधिकाधिक संख्या पर आधारित होती है। Overtones मूल ध्वनि की तुलना में तीव्रतर (Higher Frequency) ही होते हैं। अतः जिस ध्वनि में Overtones की संख्या अधिक होती है, वह अधिक भरावदार तथा ओजस्वी प्रतीत होती है। इसी कारण ज़वारीदार आवाज़ से जनित स्वर का लगाव अधिक स्पष्ट तथा प्रकाशमान होता है।

उदाहरण के लिए यदि तानपुरे के तारों तथा घोड़ी के मध्य ज़वारी का धागा न हो, तो तार छेड़ने पर आने वाली ध्वनि कुंद तथा प्रभावहीन होती है। ठीक उसी प्रकार, यदि कंठ स्वर ज़वारीदार न हो, तो स्वर लचर सुनाई पड़ते हैं। तारसप्तक प्रधान रागों, जैसे सोहनी, बसंत तथा वीर रस संभाव्य राग, जैसे हिंडोल, अड़ाना इत्यादि रागों में ज़वारीदार आवाज़ की ज़ोरदार फेंक प्रभावी जान पड़ती है। इसके विपरीत हल्की, ज़वारीदार तथा अनुनासिक ध्वनि का प्रयोग नखरेल भावों तथा शृंगारिकता को दर्शाने के लिये किया जाता है। लोचदार स्वर-गुच्छों में यदि ज़वारी न हो, तो वे शृंगारिक नहीं अपितु करुण प्रतीत होते हैं। जानकार पाठक इसे सप्रयोग करके जाँच सकते हैं।

वज़नदार आवाज़

1 उस्ताद ग़ुलाम हसनैन खां उर्फ राजामियाँ से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, 05/03/2020

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 12, Issue 01, January-June, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2024

तीसरा महत्त्वपूर्ण गुण है आवाज़ में 'वज़न' का होना। इसे 'गाज' भी कहा गया है। ध्यान रहे, केवल उच्च तीव्रता की कंठ ध्वनि को 'शोर' कहा जायेगा, 'गाज' नहीं। गाज का गुण कंठ ध्वनि का ऐसा गुण है, जिसमें उपरोक्त दो गुणों–गोलाई तथा ज़वारी का समावेश तो है ही; साथ ही पेट तथा छाती में ध्वनि के गूँजन का एक विशेष आयाम इसमें जोड़ा जाता है। इससे ध्वनि अधिक ओजस्वी तथा वज़नदार प्रतीत होती है। पाश्चात्य कंठ-शास्त्र में इसे 'Chest Voice' कहते हैं।

इस लगाव के कारण मींड़, माँड़, खेंच, गमक तथा तान इत्यादि क्रियायें स्पष्टतापूर्वक ध्वनित होती हैं। गाज के गुण को तैयार करने हेतु स्वास्थ्य का उत्तम होना आवश्यक है। इसके प्रयोग हेतु श्वसन क्रिया पर भी अधिकार आवश्यक है। आवाज़ में सबलता होने पर 'गाज' का गुण सिद्ध होता है। इस लगाव को आगरा घराने की गायकी के 18 अंगों में भी स्थान दिया गया है। उ॰ फ़ैयाज़ खां, उ॰ लताफ़त हुसैन खाँ और उ॰ ख़ादिम हुसैन खाँ की ध्वनिमुद्रिकाओं को सुनकर जाना जा सकता है की उनकी तानों की फेंक गाज के गुण के कारण कितनी प्रभावपूर्ण बन पड़ती है। केवल स्वरयंत्र पर ज़ोर देकर गाने से अथवा अनुनासिक लगाव से यह प्रभाव उत्पन्न नहीं हो सकता।

इस संदर्भ में उ॰ राजामियाँ का कथन है – "आवाज़ का लगाव दिलकश बनाने पर आगरा घराने में शुरुआत से ही ध्यान दिया जाता है। आवाज़ हमेशा 'खुली-डुली' होनी चाहिये। इसे सुनकर न तो ऐसा लगे की कर्कश रूप से चिल्ला रहे हैं; और न ही लगे की आवाज़ चुराई जा रही है। Artificial यानी नकली आवाज़ से कोई भाव सिद्ध नहीं हो सकता।"[1]

प्रयोगात्मक स्वरूप

गायन की प्रस्तुति में उपरोक्त तीन गुणों का उपयोग कितना, कब और किस प्रकार करना है; यह गायक की कलात्मकता तथा कल्पना-शक्ति पर निर्भर करता है। साथ ही; जिस राग की प्रकृति में जिस प्रकार का स्वर-लगाव तथा काकु प्रयोग अपेक्षित हो, उसके अनुसार कंठ-स्वर को इन तीन गुणों के अनुसार समायोजित किया जाता है।

कंठ संगीत की कला में शब्दोच्चार के साथ ही कंठ-ध्वनि का लहज़ा अथवा Tone भी एक निश्चित भाव को व्यक्त करने हेतु प्रयुक्त होता है। जैसे - घनवत आवाज़ से गंभीरता को दर्शाया जाता है तथा भावों की तीव्रता की अभिव्यक्ति हेतु तीखी आवाज़ का प्रयोग होता है। ध्वनि-गुणों के सम्मिश्र प्रभावों की संभावनायें अनंत है। केवल ज़वारीदार अथवा केवल गूँजदार आवाज़ का सतत लगाव भी प्रभावी नहीं हो सकता। इन दोनों का कम-अधिक प्रभाव में सम्मिलित लगाव ही अपेक्षित होता है। एकसुरी यानी Monotonous आवाज़ के प्रयोग से श्रोता जल्दी ही ऊब जाते हैं।

यद्यपि आगरा घराने में आवाज़ के रियाज़ का स्वरूप निश्चित है। तथापि; प्रत्येक विद्यार्थी के लिये इसका एक जैसा स्वरूप लागू करना उचित नहीं होता। क्यूंकी आवाज़ का लगाव व्यक्तिगत सूझ-बूझ के द्वारा तथा प्रत्येक व्यक्ति की मूल आवाज़ के गुणधर्म के अनुसार ही साध्य किया जाता है। इसी कारण इस क्रिया का साफल्य गुरु की दीर्घ कालीन शिक्षा के संस्कारों के अनुरूप ही होता है।

स्त्री-कंठ हेतु आवाज़ का लगाव

आवाज़ के तीनों गुणों का उपरोक्त सिद्धांत पुरुषों के कंठ-धर्म के अनुसार बताया गया है। आगरा घराना ध्रुपद-धमार की गायकी से प्रसृत होने के कारण स्वाभाविक है कि इसे एक पुरुषोचित घराना माना गया है। तथापि; यह भी देखा जा सकता है की ज़ोहराबाई आगरेवाली तथा अन्य अनेक महिला कलाकाराओं ने भी इस घराने की ख्याल गायकी को अपनाया है। रियाज़ करने पर आवाज़ के स्त्रियोचित गुणधर्मों की हानि न हो, इसका ध्यान रखना भी नितांत आवश्यक है। स्त्री गायिकाओं के आवाज़ के लगाव के सम्बन्ध में पं. बबनराव हळदणकर कहते हैं – "यह सत्य है की आवाज़ में वज़नदारी के बिना गायन प्रभावी होना संभव नहीं। स्त्रियों ने भी अपनी आवाज़ में वज़न अवश्य कमाना चाहिये। आपके कंठ की जितनी क्षमता हो, उतनी ही वज़नदारी दर्शाना अच्छा है। अधिक घुमारदार (गोलाईयुक्त) आवाज़ स्त्रियों के

1 उस्ताद ग़ुलाम हसनैन खां उर्फ राजामियाँ से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, 05/03/2020

कंठ में सुशोभित नहीं होती। ज़वारी भी मर्यादित प्रमाण में हो, तो ही अच्छी है। इन सबका ध्यान रखकर ही स्त्री गायिकाओं ने रियाज़ करना चाहिये।"[1]

आलोचनात्मक पक्ष

घराने के विषय पर आधारित अनेक ग्रंथों में आगरा घराने के गायकों के कंठ स्वर की गुणवत्ता पर आलोचनात्मक लेखन किया गया है। अनेक ग्रंथों में उल्लेख है कि आगरा घराने के गायक आवाज़ का लगाव रूक्ष करते हैं। यह सत्य है कि आगरा घराने के गायक अपने कंठ-स्वर की मधुरता अथवा कंठ पर आधारित चमत्कारों हेतु प्रसिद्ध नहीं हैं। यह भी सत्य है कि कुछ कलाकारों जैसे उ० विलायत हुसैन, उ० बशीर खाँ, उ० शराफ़त हुसैन, उ० लताफ़त हुसैन, पं० के० जी० गिंडे इत्यादि के ध्वनिमुद्रणों को सुनकर ऐसा प्रतीत होता है मानों वे आवाज़ को अत्यधिक ज़वारीदार बनाकर गायन पेश कर रहे हों। तथापि, मेरा यह मानना है कि किसी घराने के आवाज़ के गुणधर्म को सारभूत रूप में जानने के लिए केवल कतिपय उदाहरणों पर निर्भर रहना सही नहीं।

यदि आगरा घराने के ख्याल गायन के मुख्य स्तंभ उ० फ़ैयाज़ खाँ साहब के सभी ध्वनिमुद्रणों को सुना जाए, तो एक बात अवश्य ध्यान में आएगी कि वे प्रत्येक राग हेतु भिन्न प्रकार से आवाज़ का लगाव दर्शाते थे। केवल किसी राग-विशेष हेतु ही नहीं, ध्रुपद-धमार की नोम-तोम या लयकारी, ख्याल की बढ़त, छोटे ख्याल के बोल-बनाव, तानकारी, मंद्र अथवा तार सप्तक इत्यादि सभी हेतु उनकी आवाज़ का लगाव अलग-अलग गुणों से ओत-प्रोत है। खाँ साहब के छायानट और भंखार रागों के मंद्र पंचम के खड़े लगाव को सुनकर रोमांच का अनुभव होता है, वहीं विभास और बरवा रागों के मध्यम और गांधार के अवरोही लगाव कोमलता और करुणा की अनुभूति देते हैं। काफी राग के 'वन्दे नंदकुमारम्' में वे अधखुली आवाज़ से टप्पे की फिरत गाकर झरने का आभास कराते हैं, तो वहीं सूहा-सुघराई में गमकपूर्ण दहाड़ से चौंकाते भी हैं। पूर्वी के 'मथुरा ना जाजो मोरा कान्ह' में वे आवाज़ का लगाव और शब्दों का उच्चारण इतने लाडलेपन से करते हैं, की श्रोता के मन में एक छह-सात वर्षीय अबोध बालिका की छवि प्रकट हो जाती है, जो अपने कान्हा को ब्रिंदावन छोड़कर जाने नहीं देगी। कंठ-स्वर के ऐसे अनेक रसपूर्ण प्रयोगों से परिपूर्ण कलाकार द्वारा प्रस्थापित शैली में रुक्षता का आभास समीक्षकों को क्यूं होता है, इस पर विचार-विमर्श करना मैं आवश्यक समझता हूँ।

आम तौर पर गायन में रुक्षता का परिमाण स्वर के लगाव के आधार पर लगाया जाता है। उ० फ़ैयाज़ खाँ और उनकी गायकी के मर्म को जानने वाले आगरा घराने के अन्य गायक अपनी प्रस्तुति में बिना किसी अति-अलंकारिकता के सीधे-सरल स्वरों का लगाव अधिक करते हैं। किसी भाव के प्रकटीकरण के लिए वे राग के चलन और स्वरों के प्राकृतिक रूप से जन्य प्रभाव पर ही निर्भर रहते हैं। 'सुर के असर' को बनाने के लिए किसी बनावटी प्रदर्शनकारी तंत्र क्रिया की आवश्यकता उन्हें प्रतीत नहीं होती। अतः इस मानसिकता सहित कला प्रस्तुत करते समय उनकी आवाज़ का लगाव स्वर के 'स्वतः राजयते' नामक मूलभूत असर के अनुरूप, बिना किसी दिखावटीपन के, मार्मिक ढंग से किया जाता है।

घरानों के बाबत लेखन सन् १९७० के दशक में प्रचुर मात्रा में हुआ। यह वह काल था, जिसमें कुछ नयी विचारधारा वाली गायन और वादन शैलियों का भी उदय हुआ। नव-लालित्य की तथाकथित संकल्पना भी पनपी। घरानों की मौलिक सौंदर्य दृष्टि से हटकर कुछ करने की चाह जगी, और ऐसे तौर-तरीक़ों को अपनाया जाने लगा जो कम समय में और बिना गहन विचार के राग में रंग भर सकें। इसी दृष्टिकोण के चलते प्रत्येक राग में लोच, खटके-मुरकी, आरोही-अवरोही टुकड़े, और आवाज़ के उतार-चढ़ाव इत्यादि रसास्वाद-सुलभ तकनीकों का प्रयोग बहुतायत में किया जाता रहा। सुरों का सहज, सुस्पष्ट और घनीभूत प्रयोग राग संगीत में कम होने लगा। जिन रागों में सीधा-सरल स्वर प्रयोग हुआ करता है, उन्हें गाने का चलन कम होने लगा, अथवा ऐसे रागों में भी इन्हीं तीन-चार तकनीकों का प्रयोग बढ़ा-चढ़ाकर होने लगा। इस प्रकार की गायकी उ० अमीर खाँ, उ० बड़े ग़ुलाम अली खाँ, पं० जसराज इत्यादि कलाकारों द्वारा प्रसिद्ध की गई। गुणक्री,

1 साक्षात्कारकर्ता-डॉ. शुभांगी बहुलीकर तथा डॉ. विकास कशाळकर, पं. बबनराव हळदणकर से बातचीत, पुण्यस्वर वार्षिक, आगरा घराना विशेषांक, पुणे विद्यापीठ, पुणे, मार्च 2013, पृष्ठ-33

विभास, भंखार, हिंडोल जैसे राग, जिनमें हल्की हरकतों की संभावना कम है, उन्हें कम गाया जाने लगा। यमन, केदार, बिहाग जैसे प्रचलित राग, जिनमें कतिपय स्थानों पर सुर का सीधा लगाव भी अपेक्षित होता है, उन्हें भी अलंकारिकता से मढ़कर पेश किया जाता है।

राग प्रस्तुतीकरण में अलंकारिकता के आधिक्य से होने वाले प्रभावों का अध्ययन एक नये शोध का विषय हो सकता है। पर राग-भाव पेश करने के बजाए अगर केवल कलात्मक कंठ-क्रियाओं और अलंकारिक तंत्र प्रदर्शन को पेश कर तालियाँ बटोरी जायें, तो ऐसे कार्यक्रमों को उस कलाकार-विशेष का 'कौशल्य प्रदर्शन' घोषित किया जाना चाहिए, न की राग संगीत की महफ़िल। ऐसे प्रदर्शनों की तुलना अगर आगरा घराने की राग संगीत प्रस्तुति से करने के बाद यदि कोई इसे रूक्ष कहे, तो यह उचित प्रतीत नहीं होगा। सभी जानते हैं कि श्रोता के मन पर राग-भाव का असर ही अधिक समय तक अंकित रहता है, न की नक़्क़ाशी करने की कला का। अतः किसी घराना-विशेष के स्वर लगाव और स्वरावलियों को बनाने के तरीक़े से तुलना करते हुए, और तथाकथित 'मिठास' की भ्रामक कल्पनाओं के तराज़ू में आगरा घराने की शैली को तौलते हुए उसे रूक्ष घोषित करना मेरी दृष्टि में सर्वथा अयोग्य है।

पं. डॉ. राम देशपांडे का इस संदर्भ में कथन है - "यदि कोई कलाकार आवाज़ का लगाव अति-तीक्ष्ण, कर्कश या कठोर करता है, तो यह उसका निजी दोष है। यह घराने का दोष नहीं कहलायेगा। दूसरी बात, ध्वनि-क्षेपण यंत्रों के चलन के बाद ही आवाज़ का तीक्ष्ण लगाव एक दोष माना जाने लगा। Microphone इत्यादि के चलन के पहले यह आवाज़ का एक आदर्श गुण माना जाता था। क्यूंकी तीक्ष्ण आवाज़ सभागृह के अंतिम श्रोता तक भी आसानी से पहुँचती थी। आज की पीढ़ी के कलाकारों में आवाज़ के लगाव के मामले में जो औचित्यपूर्णता (Decency) देखने को मिलती है, वह पहले नहीं हुआ करती थी। यह विचार बाद में हुआ, और उसमें भी सुधार होता गया। इस पीढ़ी के कलाकारों को आवाज़ की औचित्यता का पालन करना परमावश्यक है।"[1]

प्रस्तुतीकरण की गरिमामयता

जैसा कि पहले उल्लिखित है, शास्त्रीय संगीत की सभी विधाओं में गरिमामयता तत्त्व का होना अतीव आवश्यक माना गया है, और आगरा घराने में यह तत्त्व रचा-बसा है। प्रस्तुतीकरण की गरिमामयता केवल कंठ-ध्वनि के गुण पर निर्भर नहीं; अपितु गायन की सामग्री के परिमाण तथा गुणवत्ता पर भी आधारित है। ख्याल गायन की प्रत्येक उपज में प्रयुक्त स्वरावलियों को सुस्थिर स्वरों, मींड़, आंस, खेंच इत्यादि सहित गाने पर संगीत की अभिजातता में वृद्धि होती है। यह अभिजातपूर्ण बर्ताव लगभग सभी रागों की प्रस्तुति हेतु योग्य माना जाता है; न की केवल गंभीर प्रकृति के रागों हेतु। मारुबिहाग या देस जैसे चंचल रागों को गाते समय आवाज़ के हल्के लगाव सहित, मींड-खेंच इत्यादि के साथ चपल आरोही-अवरोही क्रियाओं, खटका, मुरकी या गिटकरी जैसी हल्की-फुलकी हरकतों को भी यथायोग्य स्थानों पर प्रयोग किया जाता है।

षड्ज भरना

आगरा घराने की शैली में 'षड्ज भरने' को बहुत महत्त्व दिया जाता है। यह एक विलक्षण प्रभावी क्रिया है, जो प्रस्तुतीकरण की गरिमा को बढ़ाती है। आलाप से लेकर तानक्रिया तक; प्रत्येक चरण में बारम्बार मध्य तथा तार षड्ज पर ठहराव करना 'षड्ज भरना' या 'सा भरना' कहलाता है। मंद्र सप्तक की स्वरावलियाँ आम तौर पर मध्य सप्तक के षड्ज का संधान करती ही हैं। आगरा घराने के गायक मध्यम-पञ्चम या धैवत-निषाद स्वरों के आस-पास आने वाली स्वरावलियों को भी पुनः-पुनः मध्य अथवा तार सप्तक के षड्ज से जोड़ते हैं। स्वरावलियों के अंत में षड्ज पर ठहराव करना भी 'षड्ज भरने' का एक माध्यम है। आलाप-प्रधान रागों में तो यह क्रिया विशेष रूप से की जाती है। यह क्रिया प्रस्तुति को एक अखंड धागे से गूँथती हुई प्रतीत होती है, जो भव्यता की अनुभूति कराता है।

उत्तरांग प्रधान रागों, जैसे सोहनी इत्यादि में तार-षड्ज को इसी प्रकार प्राधान्य दिया जाता है। अगले चरणों में विस्तार-क्रिया की लय बढ़ने पर मध्य षड्ज की अपेक्षा तार-षड्ज को अधिक महत्व मिलता है। प्रत्येक एक-दो आवर्तनों बाद लंबा तार 'सां' लगाया जाता है। मध्य तथा तार षड्ज के न्यास की यह क्रिया लयकारी, बोल-बाँट तथा द्रुत ख्याल में भी की जाती है। कुछ रागों, जैसे मारवा इत्यादि को छोड़कर

1 डॉ. पं. राम देशपांडे से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, 07/02/2020

लगभग सभी रागों में षड्ज स्वर अन्य स्वरों से सुसंवादी अंतर पर ही स्थित होता है। इस कारण इस पर न्यास करने से अन्य स्वरों का सौंदर्य भी बढ़ता है।

'सा' भारतीय राग संगीत का मूल स्वर माना गया है। विस्तार क्रिया में इसे महत्त्व देने पर यह साङ्गीतिक वातावरण को गहन बनाता है। मेरुखंड के अनुसार विस्तार करने पर षड्ज स्वर केवल शुरुआती कुछ मिनटों तक ही विद्यमान होता है। अगले स्वरों को क्रमवार महत्त्व देने पर षड्ज का यह मूलाधार खो जाता है और प्रस्तुति में हल्कापन लगने लगता है। इसी कारणवश आगरा घराने में षड्ज से दूर रहकर अधिक समय तक स्वर-विस्तार नहीं किया जाता।

दीर्घ स्वरावलियों का प्रयोग

गरिमामयता का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारक है – "दीर्घ और अटूट स्वरावलियों का प्रयोग"। यह भी आगरा घराने के गायन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। इसे उस्ताद लोग 'दमसांस का गाना' भी कहते हैं। दमसांस का प्रयोग आलापचारी में करना अपेक्षित होता है। जयपुर घराने की गायकी में भी इसे विशेष स्थान प्राप्त है। सुरश्री केसरबाई केरकर तथा गानतपस्विनी मोगूबाई कुर्डीकर की ध्वनिमुद्रिकाओं को सुनने पर दीर्घ श्वसन से युक्त अटूट स्वरावलियों का असर जाना जा है। दमसांस केवल किसी एक स्वर को दीर्घ करने, जैसे तार षड्ज के लंबे प्रयोग तक ही सीमित नहीं है। आलाप करते समय स्वरावली में निहित एक विशिष्ट धीमी लय को निभाते हुए मींड़, आंस, खेंच, गमक इत्यादि सहित जब एक या एकाधिक स्वरावलियों को बिना सांस तोड़े गाया जाता है, तो उससे भव्यता का भाव निर्मित होता है। दीर्घकालीन स्वरावली का अंत जब षड्ज भरकर किया जाये तो वह 'सोने में सुगंध' के समान होता है।

पं. श्रीकृष्ण (बबनराव) हळदणकर अपने गुरु उस्ताद खादिम हुसैन खां के एक वक्तव्य को शिष्यों के समक्ष हमेशा कहते – "गाना सुनकर श्रोता को ऐसा लगना चाहिये, मानो उसके सामने पहाड़ खड़ा हो।" एक पहाड़ के सामने खड़े होने से एक व्यक्ति को प्रकृति के कई पहलू एक साथ दिखते हैं। वह व्यक्ति ऊपर उड़ते बादल, नीले आसमान की पृष्ठभूमि पर दिखते पहाड़ की ऊँचाई, चौड़ाई की भव्यता से प्रभावित होता है। साथ ही, पहाड़ पर विद्यमान प्रकृति की छटा, पेड़-पौधों, बेलों की हरियाली, हवा के सशक्त झोंके, और जीव सृष्टि के क्रिया-कलापों को देखकर आह्लादित भी होता है। इस भव्यता के सामने वह ख़ुद को छोटा अवश्य महसूस करता है, फिर भी उसका मन आनंदित होता है। ऐसे गरिमामय प्रभाव की निर्मिती गायन द्वारा करने हेतु भव्य कल्पना शक्ति की आवश्यकता होती है। ऐसी कल्पना को चित्रित करने, उसे निभाने के लिए दीर्घ श्वास पर नियंत्रण भी आवश्यक है।

आगरा घराने में दीर्घ साँस को निभाने का गुण अनेक पीढ़ियों से चला आ रहा है। पं. श्रीकृष्ण (बबनराव) हळदणकर उनके ग्रन्थ 'मिलनोत्सुक दो तानपुरे' में दो घटनाओं का उल्लेख करते हैं। प्रथम उल्लेख के अनुसार – 'उस्ताद ग़ुलाम अब्बास खाँ, जो उस्ताद फ़ैयाज़ खां के नाना थे, एक सांस में द्रुत ख्याल के आठ आवर्तनों तक तानें गा सकते थे'। उस्ताद विलायत हुसैन खां ने भी अपने ग्रन्थ 'संगीतज्ञों के संस्मरण' में ग़ुलाम अब्बास खां के इस गुण का उल्लेख किया है। दूसरे उल्लेख के अनुसार - नब्बे वर्ष की आयु में भी ग़ुलाम अब्बास खां का श्वास तीस वर्ष के पं. दिलीपचन्द्र बेदी से दुगुना लंबा था। एक बार बेदी जी फ़ैयाज़ खाँ साहब द्वारा सिखायी हुई एक दीर्घ तान का रियाज़ करते समय उसे दो श्वासों में तोड़कर गा रहे थे। यह सुनकर ग़ुलाम अब्बास खां लाठी टेकते हुए उनके पास आकर खड़े हुए और उस तान को उन्होंने एक सांस में सहज रूप से गाकर सुनाया। इसके बाद वे बोले – "तुम्हारी उम्र में तो मेरी सांस इससे चौगुनी थी।" इसकी पुष्टि पं॰ कुमारप्रसाद मुखर्जी की किताब 'कुदरत रंग-बिरंगी' में भी की गई है।

उस्ताद खादिम हुसैन हमेशा कहा करते की – 'गाना तो सांस का काम है।' उनके शिष्य पं. हळदणकर ने यह भी उल्लेख किया है की एक बार उस्ताद खादिम हुसैन ने उनके श्वास की दीर्घता की परीक्षा लेने की ठानी। बबनराव जी मन ही मन हंसने लगे, क्योंकि उनका दीर्घ श्वसन का रियाज़ काफ़ी अच्छा था, फिर भी गुरु की इच्छा का सम्मान करते हुए वे मौन रहे। खाँ साहब ने तार सप्तक का षड्ज साधा और शिष्य हळदणकर जी को साथ स्वर मिलाने को कहा। कुछ देर बाद शिष्य की सांस टूट गई, पर खाँ साहब का स्वर अनवरत था। उन्होंने हाथ के

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 12, Issue 01, January-June, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2024

इशारे से बबनरावजी को दूसरी साँस लेने को कहा। यह सारा क्रम और एक बार घटित हुआ। अंततः परीक्षणोपरांत, वृद्धावस्था के उस्ताद खादिम हुसैन का श्वास युवा हळदणकर जी के श्वास से तीन गुना अधिक निकला।

यह सत्य है की तनावपूर्ण जीवनशैली, प्रदूषण, श्रम की कमी तथा वैचारिक अस्थिरता के कारण शारीरिक तथा मानसिक क्षमताओं का क्षय होता जा रहा है। अतः पूर्व की पीढ़ी के गायकों की तुलना में अगली पीढ़ियों के गायकों की श्वास और कंठ-स्वर संबंधी कतिपय क्षमताओं में भी कमियाँ दिखना स्वाभाविक है। तथापि; प्रत्येक गायक ने वज़नदारी के लिये आवश्यक दीर्घश्वास के गुण को अपनाने का यथासंभव प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। दीर्घश्वसन का गुण सिद्ध होने पर उसका संयमित तथा यथायोग्य स्थान पर प्रयोग करना गायन की प्रभावशालिता के लिये अपेक्षित है।

बंदिश का चयन

डॉ॰ गायत्री आठल्ये राग संगीत की गरिमामयता के संदर्भ में कहती हैं - "कुछ घरानों में आलाप के दौरान भी तेज लय की हरकतों और आरोही-अवरोही छोटी तानों जैसी रचनाओं को स्थान दिया जाता है, किन्तु आगरा-ग्वालियर की परंपरा में इस तरह की क्रियाओं को मान्यता नहीं है। कुछ बड़े ख़्याल की बंदिशें भी हरकतपूर्ण होती हैं। ऐसी बंदिशों से भी इन घरानों के कलाकार परहेज़ करते हैं। बंदिश पेश करने के तरीक़े से ही कलाकार की भावी गायकी का आभास होने लगता है। राग दरबारी कान्हड़ा जैसे राग में अगर बंदिश गाई जा रही हो, तो उसके स्पर्श स्वरों में भी गमक का प्रयोग होता है।"[1]

उपरोक्त कथन से यह पता चलता है कि ख्याल गायन में किसी राग का प्रस्तुतीकरण भव्यता की अनुभूति तभी करा सकता है, जब उसकी विलंबित बंदिश भी भव्यता के गुणों से युक्त हो। यदि बंदिश में स्वरावलियाँ छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटी हों, खंडित रूप में हों, अथवा अव्यवस्थित हों, तो ऐसी बंदिश गाकर आगे का स्वर विस्तार भी इसी तरह सूझेगा। स्वरावलियों की अखंडितता का संस्कार कलाकार की गायकी में पैवस्त हो जाये, इस उद्देश्य से आगरा घराने में कुछ बंदिशें ऐसी रची गयी हैं, जिनमें दीर्घ श्वसन आवश्यक है। विशेषतया विलंबित ख्यालों में ऐसी अनेक बंदिशें पायी जाती हैं। जैसे - राग झिंझोटी में 'महादेव शंकर जटाजूट', राग खंबावती (खमाज अंग) में 'आली री मैं जागी' और राग रामकली में 'डुलिया ले आवो'। इन बंदिशों में स्वरावलियाँ तथा शब्द-रचना इस प्रकार स्थित की गयी हैं, जिन्हें बिना सांस तोड़े गाने पर ही वे प्रभावी होंगी, अन्यथा नहीं। ऐसी बंदिशों को बार-बार गाकर रियाज़ करने पर भव्यता का तत्त्व अंगीकृत हो सकता है।

लय का महत्त्व

भव्यता की अनुभूति हेतु लय-तत्त्व भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। पूर्व में वर्णित स्वर-क्रियाओं जैसे आंस, खेंच, मींड़, गमक, आंदोलन इत्यादि तभी प्रभावी होंगे, जब उन्हें एक विशिष्ट धीमी लय में गाया जाये। गायन की भव्यता ताल की चयनित लय पर भी आधारित होती है। यदि ताल की लय प्रस्तुतिकरण में निहित स्वरावलियों की लय से आधी हो, तो गहनता का भाव नष्ट होगा। ऐसी प्रस्तुति भाग-दौड़ के चंचल भाव की अनुभूति कराएगी। प्रस्तुतीकरण की लय जब ताल की लय के समान, या उससे किंचित धीमी हो, तभी अपेक्षित गरिमामय वातावरण तैयार होगा। ग्वालियर, आगरा तथा जयपुर इन तीनों घरानों में ताल की लय को अति-विलंबित नहीं किया जाता। उस्ताद फ़ैयाज़ खां की राग भंखार की ध्वनिमुद्रिका में उन्होंने त्रिताल की लय मध्यलय के आस-पास रखी है। किन्तु, उनके गायन की लय उससे आधी है। दीर्घ मींड, अटूट स्वरावलियों से जनित गरिमामय बरताव के कारण कुछ आवर्तनों तक ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे विलंबित लय में गा रहे हों।[2]

यदि इस बरताव के विपरीत क्रिया की जाये; अर्थात ताल की लय अति-विलंबित हो, स्वरावलियों की लय उसकी चौगुन में हो, तथा यथेष्ट मुरकी इत्यादि हरकतों सहित आलापचारी की जाये; तो ऐसा प्रस्तुतीकरण निश्चित ही गरिमाविहीन होगा। ऐसी लय में ठेके का स्वरूप भी

1 डॉ. गायत्री आठल्ये से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, 15/12/2018
2 उस्ताद फ़ैयाज़ खां, ध्वनिमुद्रण, सारेगम इंडिया लिमिटेड, 31/12/1990

बिखरा हुआ होता है, क्यूंकी तबलवादक को दो मात्राओं के मध्य दूनी या चौगुनी लय में बोल भरकर बजाने पड़ते हैं। ठेके की लय और गायन की लय का साधर्म्य होना भव्य प्रस्तुति की दूसरी शर्त है।

तबले के विद्वान पं॰ सुधीर माईनकर मानते थे – "गायन में ठेके की लय उतनी ही रखनी चाहिये, जितनी तबले के बोल की आंस हो।" अर्थात लय अधिकाधिक इतनी ही विलंबित हो, जहाँ सम पर आने वाले 'धा' अथवा 'धिं' इत्यादि बोलों की स्वाभाविक गूंज खत्म होने पर तुरंत दूसरी मात्रा प्रारंभ हो। 25 BPM तक की विलंबित लय में अगली मात्रा तक का काल व्यतीत करने के लिए डग्गे पर 'घे-गे' के दाब-गांस युक्त बोलों को भरा जाता है। इससे भी ठेका दमदार बनता है। यदि वाद्य की स्वाभाविक गूंज खत्म हो जाये और फिर भी अगली मात्रा हेतु अत्यधिक लयावकाश बाकी रहे; तो ऐसी स्थिति में लय निभाने के लिए कोई अन्य बोल, जैसे – तिरकिट इत्यादि भरकर ही तबलावादक को अगली मात्रा बजानी पड़ती है। निश्चित ही ऐसे ठेके की, ऐसे ठेके पर आधारित गायन की गरिमामयता कम हो जाती है।

निष्कर्ष

आगरा घराने के गायकों ने 'गरिमामयता' नामक सौन्दर्य के एक अनोखे पहलू को कई वर्षों की परंपरा में स्थान दिया और परिपोषित भी किया। यही कारण है की अभिजात संगीत प्रेमी श्रोता, राजा-महाराजा, नवाब, संगीत समीक्षक, विद्वज्जन तथा जानकार आयोजक इस घराने के कलाकारों को अनेक वर्षों तक एक विशेष आदरयुक्त स्थान देते आये हैं। शास्त्रीय राग संगीत की ध्रुपद-धमार, ख्याल-तराने जैसी विधाओं की पहचान ही इसके गरिमामयता के गुण के कारण है, जो इन्हें अन्य गीत-प्रकारों से भिन्न दर्शाती है। इस गुण का जतन करने पर ही राग संगीत अक्षुण्ण रहेगा। प्रस्तुत मीमांसा के आधार पर अभिजातता के इस गुण को अपनी प्रस्तुति में स्थान देकर संगीत जगत के भावी कलाकार इस बदलाव के युग में भी अपने गायन में गरिमामयता को सुस्थापित रखेंगे।

संदर्भ

खां, उस्ताद ग़ुलाम हसनैन (उर्फ राजामियाँ), साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, मुंबई (महाराष्ट्र), 05/03/2020

साक्षात्कारकर्ता – बहुलीकर, डॉ. शुभांगी, कशाळकर, डॉ. विकास, पं. बबनराव हळदणकर से बातचीत, पुण्यस्वर वार्षिक, आगरा घराना विशेषांक, पुणे विद्यापीठ, पुणे, मार्च 2013, पृष्ठ-33

देशपांडे, डॉ. पं. राम, साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, मुंबई (महाराष्ट्र), 07/02/2020

आठल्ये, डॉ. गायत्री, साक्षात्कार द्वारा प्राप्त जानकारी, मुंबई (महाराष्ट्र), 15/12/2018

उस्ताद फ़ैयाज़ खां, ध्वनिमुद्रण, सारेगम इंडिया लिमिटेड, 31/12/1990

हळदणकर, पं॰ श्रीकृष्ण (उर्फ़ बबनराव), मिलनोत्सुक दो तानपुरे, विद्यानिधि प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2001